स्पष्टोच्चारण, असहमति और उन्मूलन : संस्कृत साहित्य में नारी आत्मचेतना और स्वातंत्र्य की छवियां

शालिनी शाह

नारीवाद की अधिष्ठात्रियों में अग्रगण्य सिमोन दि बुवोर ने अपनी मार्गशोधक पुस्तक 'द सेकेण्ड सेक्स' में इस बात का खुलासा किया था कि स्त्रियां अपने हक में एकजुट इसलिए नहीं हो पाती हैं क्योंकि उनका न कोई अतीत है न इतिहास और न ही कोई धर्म। अस्तित्व को पहचान देने वाले सभी चिह्नों से शून्य नारी पूरी तरह स्वत्वहीन है। अपने इस लेख में मैं बुवोर के इस नैराश्यपूर्ण विश्लेषण की आलोचना प्रस्तुत करूंगी। संस्कृत साहित्य में हमें अनेक ऐसे उदाहरण मिलते हैं जिनके आधार पर हम यह कह सकते हैं कि पितृसत्तात्मक समाज की रूढ़ियों और विचारधारा के प्रति अपनी असहमति जताते हुए नारी ने न केवल अपने मत को स्पष्टता से प्रस्तुत किया है अपितु रूढ़ियों का उन्मूलन करने में भी वह कृतसंकल्प दिखी है। अतः 'अतीत' को हम केवल स्त्रियों के शोषण का उत्तरदायी मान, एक 'बंद दरवाजा' कह कर खारिज नहीं कर सकते। इसी अतीत में हमें अनेक ऐसे गवाक्ष दिखायी देते हैं जो सीधे भविष्य से आकर जुड़ते हैं और मुक्त नारियों की आशापूर्ण छवि का दर्शन देते हैं।

पितृशासित समाज के नियमों में से एक है स्त्री को 'मूक' रखना। पुरुष प्रधान स्त्रोतों में या तो नारी पूरी तरह मौन है अथवा वह 'पुरुष स्वर' को ही मुखरित करती है। इस यथार्थ के बावजूद संस्कृत साहित्य का अध्ययन हमारे समक्ष ऐसे उदाहरणों को प्रस्तुत करता है जहां स्त्री हमें न केवल स्पष्टोच्चारण करती दिखायी देती है अपितु जो वह कह रही है वह भी उसकी अपनी बोली है। शीला, विज्जिका, मारुला और मोरिका नामक चार कवयित्रियों का जिक्र धनदेव करते हैं और कहते हैं कि वे सब कुछ कहने में समर्थ थीं – 'विश्वम् वक्तुम् यः प्रवीणस्य'। विज्जिका एक ऐसी कवयित्री थीं जो न केवल उच्चकोटि की कविता करती थीं अपितु अपनी बौद्धिक योग्यता के प्रति पूरी तरह प्रबुद्ध थीं और यथास्थान उसका ढिंढोरा पीटने में भी उन्हें कोई झिझक नहीं थी। काव्यादर्श के लेखक दण्डि द्वारा सरस्वती को 'सर्वशुक्ला' बताये जाने पर आपत्ति जताते हुए वज्जिका कहती हैं कि : *"इस बात*

www.tadbhav.com

से अनभिज्ञ कि मैं नीलकमल के समान सांवली हूं दण्डि व्यर्थ में ही सरस्वती को सर्वशुक्ला सम्बोधित करते हैं।" एक स्थान पर विज्जिका अपनी काव्य सामर्थ्य की श्रेष्ठता जताते हुए यहां तक कह डालती हैं कि : *"एक कमल से पैदा हुआ, दूसरा बालू तट पर और तीसरा बल्मीक से। (अर्थात ब्रह्मा, व्यास और वाल्मीकि) ये महान कवि हैं और इन्हें मैं नमन करती हूं किन्तु यदि अन्य पुरुष हमें अपनी साहित्य रचना से लुभाना चाहें तो मैं अपना दाहिना पैर उनके मस्तक पर रखती हूं।"* विज्जिका का यह बौद्धिक अहम् मात्र निजी तौर पर शेखी बघारना नहीं है। वह पूरी नारी जाति की ओर से इस बोलने की शक्ति की दावेदारी करती हैं। यह इस बात से ही सिद्ध होता है कि जहां सम्पूर्ण संस्कृत साहित्य में पारखियों के लिए 'रसिक' और 'सहृदय' जैसे पुरुषवाचक शब्द ही मिलते हैं विज्जिका उनके लिए 'लिंग' निरपेक्ष *'जनस्य'* शब्द का इस्तेमाल करती है।

पितृसत्तात्मक समाज में कुलस्त्री को या तो *'मंदवाक्या'* कहा गया है या फिर पूरी तरह चुप रहने की सीख दी गयी है किन्तु *बाह्या* नायिका वह साधारण स्त्री है जिसके पास बोलने का असाधारण अधिकार है। पुरुष प्रधान समाज में वही एक ऐसी स्त्री है जिसकी वाक्शक्ति के सामने पुरुष भी लज्जित होते हैं। यह वह नारी है जो स्पष्टता से अपना मूल्य स्वयं लगाती है और इस तरह मूक कुलांगनाओं की, पितृसत्तात्मक परिवारों में हुए विनिमय की परिपाटी, में व्यवघात डालती है।

'वाक्' शक्ति है यह एक अकाट्य सत्य है। यदि आपके पास बोलने का अधिकार है तो आप उस मानस को भी परिष्कृत कर सकते हैं जिससे बोलने की शक्ति उद्भूत होती है। संस्कृत महाकाव्य महाभारत के आदिपर्व में हमें उस शकुन्तला के दर्शन होते हैं जो कालिदास के नाटक अभिज्ञान शाकुंतलम की नायिका से पूरी तरह भिन्न है। कालिदास की गर्भवती नायिका बोलती नहीं है अपितु गिड़गिड़ाती है और उससे भी अधिक वह बारम्बार रोती और भाग्य को कोसती है। किन्तु महाभारत की शकुंतला दुष्यंत की राजसभा में अपने पुत्र भरत का हाथ थामे हुए प्रवेश करती है और अपने अधिकारों की निडरता से मांग करती है। दुष्यंत द्वारा *'पुंश्चली'* और *'दुष्ट तापसि'* कहे जाने पर वह प्रतिकार करते हुए कहती है *'मेरा जन्म और कुल तुमसे श्रेष्ठ है।'* उसका आहत अहम् अपने पुत्र के पिता को शाप तक दे डालता है : *'तुम्हारा मस्तक शत खंडों में बंट जाये।'* इतना ही नहीं वह पूरी निर्भीकता से राजसभा में इस बात की घोषणा भी करती है कि दुष्यंत की स्वीकृति के बिना भी उसका पुत्र भरत एक दिन सम्पूर्ण राज्य का स्वामी होगा। वह पूरे विश्वास के साथ यह भी कहती है कि वह स्वयं ऐसे पुरुष के साथ नहीं रहना चाहती जो भरोसा तोड़ने वाला झूठा और मक्कार है।

महाभारत के उद्योग पर्व में अम्बा का आख्यान आता है। अम्बा बहुत ही स्पष्टता से पितृशासित क्षत्रिय कुल में प्रचलित स्वयंवर की प्रथा की कठोर आलोचना करती है और तंज करती है *'स्वयं' 'वर'* पर जहां वास्तविकता में नारी के पास स्वयं वर को चुनने का अधिकार नहीं है। भीष्म और अपने मंदबुद्धि पिता *(मंद पितरम् मूढ़चेतस)* को धिक्कारते हुए वह उन्हें अपनी उस अवस्था के लिए दोषी मानती है जहां वह केवल एक बिकाऊ *(पण्यस्त्री)* वस्तु बन कर रह गयी है जिसे किसी भी ऐसे पुरुष द्वारा हथिया लिया जायेगा जो अपने बाहुबल *(वीर्यशुल्केन)* का प्रदर्शन करने में सक्षम हो। अम्बा के क्रोधित स्पष्टोच्चारण में हमें उस नारीवादी आत्मचेतना के दर्शन होते हैं जो पितृसत्तात्मक समाज में नारी के अधिकारों के हनन के प्रति पूरी तरह जागरूक है।

रामायण की सीता सदैव से नारीवादी आलोचकों के निशाने पर रही है। विदुषियों का मत है कि सीता एक ऐसी बोझिल पुरातन परम्परा की द्योतक है जिसका समय समाप्त हो चुका है। यह सत्य है कि वाल्मीकि ने सीता को एक आदर्श पतिव्रता के रूप में चित्रित किया है जो प्रतिपल पति के अनुसरण *(समयानुवर्तिनी)* को ही धर्म मानती है। किन्तु इन्हीं वाल्मीकि ने सीता को एक प्रबुद्ध नारी के रूप में भी देखा है जो अपने पति के निर्णय पर प्रश्नवाचक चिह्न लगाती है और अपने मत को पूरी स्पष्टता से सामने रखती है। अरण्यकांड में जब राम राक्षसों के संहार के लिए प्रतिज्ञाबद्ध होते

www.tadbhav.com

हैं तो सीता उनसे कहती हैं कि राक्षस उनके शत्रु नहीं हैं *(विना वैरम च रौद्रता)* अतः अकारण ही वह उनकी मृत्यु का संधान कर रहे हैं *(पर प्राणामिहिसंनम्)*। सीता यह भी कहती हैं कि दंडकारण्य राक्षसों का आवास है *(राक्षसान् दंडकाश्रितान्)* अतः बिना अपराध उनकी मृत्यु चाहना राम जैसे वीर पुरुष को शोभा नहीं देता *(अपराधम् विना हन्तुम्, लोको वीर न मंस्यते)*। सीता का यह भी मानना है कि वन प्रदेश तपस्या के लिए है, उसे युद्धक्षेत्र बनाना देशधर्म के विरुद्ध होगा *(क च शस्त्रम् च वनम् क च क्षात्रम् तपः क च)*। रामायण की कथा की विडम्बना यह है कि राम नहीं सीता इस हिंसा और उससे जनित प्रतिशोध की अग्नि में जीवन भर जलने को बाध्य हो जाती हैं।

महाभारत की द्रौपदी केवल पांच पतियों से विवाहित होने के लिए ही प्रसिद्ध नहीं है अपितु उनके स्वभाव की ओजस्विता उसे संस्कृत साहित्य की एक अविस्मरणीय नायिका के रूप में प्रसिद्धि दिलाती है। पितृसत्तात्मक संस्कृति में पुरुषों के अच्छे और बुरे में वर्गीकरण का आधार उनके कर्म होते हैं किन्तु स्त्री का अच्छा होना इस बात पर निर्भर है कि वह विनयशील है अथवा नहीं और त्याग व समर्पण का भाव उसमें किस मात्रा में है। द्रौपदी के चरित्र की विशिष्टता यह है कि अपनी प्रताड़ना को वह भाग्य का लेखा समझ कर नतमस्तक नहीं होती। अपनी दुर्दशा के लिए वह अपने पतियों को जिम्मेदार ठहराती है (युधिष्ठिर को वह मूढ़ तक कह डालती है)। द्रौपदी कभी भी पितृशासित समाज की प्रशंसनीय त्यागमूर्ति नारी के रूप में सामने नहीं आती अपितु पूरे आवेश से इस समाज और पितृकुल का ऐसा खंडन करती है जिसकी मिसाल संस्कृत साहित्य में शायद ही कहीं और मिले। स्वयं को *नाथवती अनाथवत्* बताते हुए द्रौपदी कहती है *"मेरा न कोई पति है न पुत्र, न भ्राता और न ही कोई सम्बंधीजन हैं। हे मधुसूदन तुम भी मेरे सुहृद नहीं हो क्योंकि तुम सभी क्रोधरहित खड़े देखते रहे और कौरव मेरा अपमान करते रहे।"* सार्वजनिक सभा में अपमानित किये जाने का दुःख द्रौपदी को विवश कर देता है यह कहने पर कि पांडव पौरुष और साहस विहीन 'नपुंसक' से कम नहीं हैं

संस्कृत साहित्य में हमें अनेक ऐसे नारी पात्र मिलते हैं जो पितृसत्तात्मक समाज के संसीमित दायरों को सार्वजनिक रूप से अस्वीकार करते हुए वैकल्पिक मूल्यों और अभिवृत्ति को सामने रखते हैं। इस तरह स्त्री और पुरुष के बीच के सम्बंधों की एक नयी परिभाषा प्रस्तुत करते हैं। कथा संग्रह शुकासप्तति में राहा राजपुत्र की पत्नी रुक्मिणी का जिक्र मिलता है जो पति से छिप कर नहीं अपितु उसके सामने ही अपने प्रेमी से सम्बंध स्थापित करने को उत्सुक है। कथासरित्सागर की योगकरंडिका भी इसी मत की पक्षधर है। उसका मानना है कि मैं अपने शरीर और इंद्रियों को भोगशून्य क्यों रखूं। देहधर्म को निबाहना योगकरंडिका की दृष्टि में कर्तव्य की श्रेणी में आता है। पितृशासित समाज में स्त्री का चरित्र इस आधार पर खंडित अथवा प्रशंसित होता है कि उसका यौन व्यवहार मर्यादित है अथवा नहीं किन्तु पुरुषों से ऐसी कोई अपेक्षा नहीं की जाती। हमारे स्त्रोतों के नारी पात्र इस दोगली मर्यादा को पूरी आस्था से नकारते दिखायी पड़ते हैं।

सोमदेवसूरि के यशस्तिलक चम्पू में हमें रानी अमृतमती का वृत्तांत मिलता है जो बिना स्त्री की इच्छा के सम्पन्न की गयी विवाह की विधि को बेचे जाने से कम नहीं समझती। (देव, द्विज, अग्नि समक्षम् मातृ पितृ विक्रितस्य) अमृतमती का मानना है कि ऐसे विवाह के उपरांत पति स्त्री के शरीर का तो स्वामी हो सकता है किन्तु उसके हृदय को नहीं पा सकता। अमृतमती कहती है पुरुष सब कुछ करने में समर्थ है किन्तु वह भी उन हृदयों को एक नहीं कर सकता जहां एक हृदय गरम लोहा है तो दूसरा शीत का गोला।

पितृशासित समाज के पारिवारिक मूल्यों पर ही हम इन साहसी नारियों को कुठाराघात करते हुए नहीं देखते अपितु इस समाज के चिन्तन की भी वह आलोचना करती हैं। धर्म और दर्शन में नारी को बहुधा 'नर्क के द्वार' के रूप में दर्शाया गया है जो पुरुष के आध्यात्मिक विकास को अवरुद्ध करती है। नारी के इस नकारात्मक चित्रण को तंत्रवाद सिरे से खारिज करता है। तांत्रिक दर्शन में स्त्री

www.tadbhav.com

आराध्य है। आठवीं शताब्दि ई. में अपनी पुस्तक अद्वय सिद्धि साधना में भगवती लक्ष्मीमकरा स्पष्ट कहती हैं कि स्त्री निन्दा स्वीकार्य नहीं क्योंकि स्त्री देवी प्रज्ञा का रूप है।

संस्कृत साहित्य की पुरुषोचित शृंगारी संस्कृति में स्त्री मात्र एक छवि है जो पुरुष की नग्नदर्शनाप्रिय (स्कोपोफीलिक) दृष्टि के लिए ही बनी है। इस संस्कृति में पुरुष की इस दृष्टि को आकर्षित करने के लिए यह आवश्यक है कि नारी सुंदर *(सुरूपा)* और युवती हो। किन्तु जयदेव के गीतगोविन्द की नायिका राधा (जो उम्र में बड़ी है और जिसे नंद कृष्ण की अभिभावक बनाते हैं) इस शृंगारी संस्कृति की आंखों में धूल झोंक कर किशोरावस्था के कृष्ण के साथ प्रेम सम्बंध स्थापित करती है। भवभूति के नाटक महावीरचरितम् की शूर्पणखा भी उम्र में कम *(क्षीरकंठक)* राम के प्रति आसक्त होती है। संस्कृत के काव्य संग्रहों में कवयित्री शीला भट्टारिका के कुछ काव्यपद हमें मिलते हैं। अपने एक पद में शीला इस पुरुषोचित शृंगारी संस्कृति पर आक्षेप लगाते हुए कहती है कि कितना अन्यायसंगत है इस समाज का विधान जो वृद्ध पुरुष को तो प्रेम करने से नहीं टोकता किन्तु स्त्री को लटकते वक्षस्थल (अर्थात वृद्धावस्था) की मर्यादा में बांध देता है।

पितृशासित संस्कृति में जहां एक ओर स्त्री के लिए उम्र की दहलीज लांघना अमर्यादित व्यवहार है वहीं विवाह को ही अस्वीकार कर देना अथवा विवाहपर्यंत को विशुद्ध न रखना भी घोर पातक से कम नहीं। किन्तु फिर भी संस्कृत साहित्य में ऐसे नारी पात्र हमारे समक्ष आते हैं जो इन मर्यादाओं का उल्लंघन करते हैं। कथासरित्सागर की स्वयंप्रभा विवाह करने से ही मना कर देती है और उसी की बहन सोमप्रभा केवल अपनी सहेलियों के सानिध्य में समय बिताना चाहती है। कथासरित्सागर में मलयवती का वर्णन आता है जो अपने जीवन में पुरुष को शामिल ही नहीं करना चाहती (पुरुषद्वेषिण ी)। संस्कृत काव्यसंग्रह में जघनचपला का एक काव्यपद मिलता है जो 'असती' नायिका के विचारों को शब्दबद्ध करता है। वह कहती है : *"एक दुर्दिन रात्रि में जब घने काले मेघों से आकाश आच्छादित है और जनशून्य नगरवीधि में चलना दुष्कर है, ऐसे में जब 'पति' विदेश गया हो तो जघनचपला को परम सुख की प्राप्ति होती है।"*

विस्तृत संस्कृत साहित्य से हमने स्त्री सम्बंधी जिन विवरणों का संचय किया है उससे यह स्पष्ट होता है कि पितृसत्तात्मक व्यवस्था कितनी भी मजबूत जड़ों वाली क्यों न हो उसका अतिक्रमण और प्रतिकार दोनों ही सम्भव थे। इस समाज में नारी चाहे कितनी भी अधीनस्थ और अशक्त क्यों न हो शक्तिशाली पुरुष के पराभव का उपक्रम करने में और उसकी सत्ता के उन्मूलन में वह यथाशक्ति जुटी हुई थी।

www.tadbhav.com